भारतीय वाङ्मय

हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक-सांस्कृतिक समाचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष 5 | **अप्रैल** 2004 | **अंक** 4

सूरज न बन सके, दीपक तो बनें

प्रयाग शहर ने देश को पाँच प्रधानमंत्री दिये हैं। यहाँ एक से बढ़कर एक साहित्यकार हुए। बड़े से बड़े विधिवेत्ता हुए। अब के साहित्यकारों में पहली जैसी वो बात नहीं रही लेकिन इसके लिए वे दोषी नहीं हैं। हम सूरज तो न बन सके कम से कम दीपक तो बनें।

— विष्णुकान्त शास्त्री, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

कहाँ हैं आज ऐसे सम्पादक

मैं तो ऐसे सम्पादक को सम्पादक नहीं मानता जो सालभर में 15 बार जूतों से न पिटा हो, 4-5 बार जिसकी खोपड़ी न फूटी हो और 8-10 मुकदमे फौजदारी व दीवानी के उस पर न चले हों।

— पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
(अपने अभिनन्दन समारोह में)

विश्व में विचारों के
विचरता रहा विवश,
बस गया वहीं पै
रहा न मन बस का,
कंठों में विराजा रसिकों के
फूल माल हो के,
कुटिल कलेजों में
त्रिशूल हो के कसका,
धारा धर विपदा के
बरसे सहस्रधार,
तो भी मेरा धीरज
धराधर न धसका,
चसका वही है
नवरस का, सनेही अभी
टसका नहीं मैं हूँ, अठहत्तर बरस का।

— कविवर सनेही 'त्रिशूल'

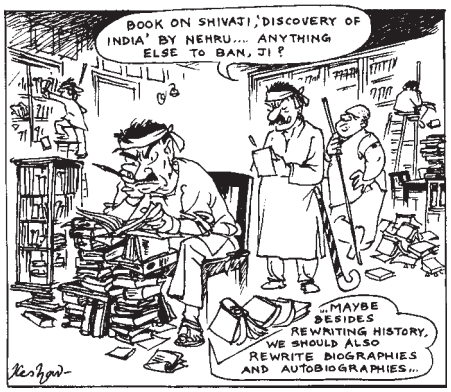

'द हिन्दू' से साभार

पाठक कहाँ गया ?

हिन्दी के वरिष्ठ प्रकाशक श्री दीनानाथ मल्होत्रा ने 'साहित्य संगम' में प्रकाशित अपने आलेख 'विस्मृत आराध्य-पाठक' में चिन्ता व्यक्त की है, 'पाठक कहाँ गया'। यह उनकी ही चिन्ता नहीं, समस्त लेखकों, प्रकाशकों तथा प्रबुद्धजनों की है।

दीनानाथजी का कहना है—''विश्व पुस्तक मेले में ऐसी पुस्तकें देखीं, जहाँ उनका हिसाब लगाया तो एक पृष्ठ की कीमत एक रुपये, दो रुपये या तीन रुपये तक भी पहुँच गई। ये अमूल्य ग्रन्थों को अप्राप्य बना रहे हैं। उत्तरोत्तर पुस्तकों के छपने के संस्करणों की संख्या कम होती जा रही है—कभी दो हज़ार थी, फिर एक हज़ार थी, फिर एक हज़ार, फिर पाँच सौ, अब सुना है कि 2-3 सौ तक भी पहुँच गई है। ऐसे प्रकाशक बन्धु हैं जो उतनी प्रतियाँ **सरकारी खरीद में कुछ हिसाब-किताब करके, बेचकर अपना घर पूरा कर लेते हैं** और लेखक को भी जो उसका देय हो, वह पहुँचा देते हैं। परन्तु **पाठक कहाँ गया ?** जिसको सामने रखकर ज्ञान के प्रसार के लिए पुस्तकें लिखी गईं। वह तो वंचित रह गया।

सरकारी खरीद की पुस्तकें तो प्राय: गोदामों में या बन्द अलमारियों में रहती हैं। तो हमारा यह सोचना कि इस देश में इतनी पुस्तकें छपती हैं, ज्ञान की वृद्धि हो रही है, यह बात बेमानी-सी लगती है।''

राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान द्वारा प्रत्येक प्रदेश में पुस्तकालय की स्थापना पाठकों को पुस्तकों के निकट लाकर उनमें पठन-रुचि का विकास करना था। कुछ वर्षों तक यह योजना ठीक चली जब क्रय की जाने वाली पुस्तकों का चयन उनकी गुणवत्ता के आधार पर होता था। राज्य सरकारों ने भी अपनी ओर से पुस्तकालयों के विकास की योजना बनाई। किन्तु जैसा कि होता आया है जनहित की ऐसी योजनाएँ नेता और प्रशासन मिलकर उसे औपचारिक मात्र बना देते हैं।

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो० श्यामाचरण दुबे के अनुसार ''सत्ता और उसके अधिकारी तंत्र की संस्कृति के संवेदनशील पक्षों पर—विशेषकर उन पहलुओं पर जो सर्जना और कलात्मकता से जुड़े हैं—नियंत्रण और निर्णय के असीमित अधिकार नहीं दिये जा सकते। सत्ता का निरंकुश हस्तक्षेप दीर्घावधि में विघातक हो सकता है, क्योंकि सत्ताधारियों और नौकरशाही के सांस्कृतिक विवेक के साथ कई प्रश्नचिह्न जुड़े हैं।''

संवेदना का सृजन करने वाला साहित्य सत्ताधारियों और नौकरशाहों के लिए थोक माल हो गया है, जिसकी खरीद में उनका हित प्रधान होता है। जिस प्रकार रेलवे आदि के बड़े-बड़े ठीके माफियाओं की मिलीभगत से होते हैं उसी तरह आज पुस्तकों की सरकारी खरीद में ऐसे समूह हैं जो अनेक नामों से पुस्तक रूपी माल की आपूर्ति करते हैं। इस माल का स्तर क्या होता है, पाठकों की रुचि का होता है या नहीं, उन तक पहुँचता है या नहीं? सरकारी खजाने में इस निमित्त आवंटित राशि का व्यय दिखाकर योजना की इतिश्री कर दी जाती है। लेखक-पाठक इस बीच कहीं नज़र नहीं आता।

आजादी के 57 वर्ष बाद भी अपने साहित्यकारों को पाठकों के निकट नहीं ला सके, विविध विषयों के ज्ञान के प्रति उनकी रुचि विकसित नहीं कर सके जबकि एलेक्ट्रॉनिक मीडिया, दूरदर्शन और सिने जगत युवकों में सांस्कृतिक शून्यता का सृजन कर रहे हैं। क्या यही भारत उदय है ?

— पुरुषोत्तमदास मोदी

महत्त्वपूर्ण कथन

श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने अपनी कविताओं के तेलुगु, कन्नड़ एवं मलयालम संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर कहा—मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं कवि के रूप में जाना जाऊँगा। मेरी पत्रकार बनने की इच्छा जरूर थी, लेकिन बीच में ही राजनीति में आ गया और इस वजह से न तो मैं कवि बन सका और न ही पत्रकार। अनुवाद का काम लगातार होते रहना जरूरी है। यदि एक भाषा में किसी साहित्य को सराहा जाता है तो उसे अन्य भाषाओं में जल्दी से जल्दी लाने में देरी नहीं होनी चाहिये।

■ ■ ■

साहित्य लेखन में स्त्री-पुरुष का विभाजन ठीक नहीं है फिर भी लेखन कार्य स्त्री चित्त से ही होता है। पुरुष चित्त से केवल दर्शन पर विचार हो सकता है। डॉ० नीरजा माधव का कहानी संग्रह 'पथ-दंश' नारी जीवन की संवेदना को गहराई से उभारता है।

— प्रो० विद्यानिवास मिश्र
डॉ० नीरजा माधव के कहानी संग्रह 'पंथ-दंश' पर आयोजित गोष्ठी में

■ ■ ■

कविता न इतिहास है न दर्शन, लेकिन दोनों कविता के विषय बन सकते हैं। कविता ऐतिहासिक स्मृतियों व दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित होती है। किन्तु कविता एक स्वतंत्र विधा है। वह न तथ्यों का प्रतिवादन करती है न तत्त्वों का विश्लेषण। कविता अंतश्चेतना की अभिव्यक्ति है। स्मृतियों ने मेरी काव्यरचना को बहुत प्रभावित किया है। ये स्मृतियाँ व्यक्तिगत व जातीय दोनों है। जातीय स्मृतियाँ ही इतिहास का मुख्य विषय है। दर्शन का जो गवेष्य है वस्तुत: कविता का भी वही गवेष्य है। दर्शन का लक्ष्य सत्य है किन्तु उसकी विधा तर्क की है, कविता का लक्ष्य भी मानव सत्य है पर उसकी विधा अनुभूति है।

संस्कृत किसी एक काल की भाषा नहीं बल्कि सनातन भाषा है (सभी भाषाएँ शिक्षा परम्परा पर निर्भर करती है, वे प्राणी नहीं हैं जिनकी जन्म व मृत्यु होती है)। संस्कृत का प्रयोग कभी विच्छिन नहीं हुआ। आज भी वह सभी भाषाओं के अन्दर विद्यमान है। वह सभी धार्मिक व दार्शनिक चितन में बराबर बनी रहती है। यह अलग बात है कि इसका प्रयोग कम है लेकिन समाप्त नहीं हुआ है। **— डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डे**

साहित्य सर्जक राज्यपाल शास्त्रीजी

साहित्य दिमागी अय्याशी नहीं है, बल्कि जीवन जीने की कला है। साहित्य से रोटी नहीं चलती किन्तु इससे रोटी का स्वाद अवश्य बदल जाता है। राज्यपाल प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री का साहित्यिक व्यक्तित्व ही है, जो उन्हें राजनीतिक भीड़ से अलग कर देता है। साहित्य सर्जक शास्त्रीजी सौम्यता और सज्जनता के प्रतिमान हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उनकी गहरी पैठ है। साहित्य के प्रति उनका यह समर्पण भाव आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत का कार्य करेगा।

—डॉ० विद्यानिवास मिश्र

कविता

देश का कल्याण कवि ही कर सकता है। इस दिशा में न राजनीति से अपेक्षा है और न धर्मनीति से। कवि ही वैचारिक क्रान्ति लाकर देश की स्थिति में कुछ सुधार ला सकता है। संसार में कविता के बगैर जीवित नहीं रहा जा सकता। कविता न होती तो यह संसार मरुस्थल होता। **—सत्यमित्रानन्द**
भारतमाता मन्दिर, हरिद्वार

■ ■ ■

बनारस की कला व संस्कृति भारतीय संस्कृति का ही अंग है। बनारस सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता है। 20वीं सदी में काशी ने सारस्वत परम्परा में योगदान करने वाले पण्डित पैदा किए।

महाराष्ट्र की पाण्डित्य परम्परा दुर्लभ है। यहाँ के पण्डित संस्कृत का ज्ञान रखने के साथ ही यूरोपीय भाषा तथा विज्ञान की भी समझ रखते हैं। यह परम्परा काशी में भी होनी चाहिए। सच्चा पण्डित वही है जो लोकोमुखी हो। अन्य लोग पण्डित नहीं बल्कि स्कालर हो सकते हैं। काशी ने 20वीं सदी में हिन्दी के तीन विभूतियों को जन्म दिया। इनमें प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद तथा रामचन्द्र शुक्ल हैं। इसी दौर में पाण्डित्य परम्परा में तीन और विभूतियाँ शामिल हुईं महामहोपाध्याय रामवतार शर्मा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। बनारस की साहित्य साधना ने पूरे विश्व के विचार को आन्दोलित किया। बनारस की कला ने एक नए युग का सूत्रपात किया। **—डॉ० नामवर सिंह**

■ ■ ■

बिना मनुष्य को पहचाने सभ्यता व संस्कृति को पहचाना जाना सम्भव नहीं है। प्राचीन सभ्यताओं को समझने के लिए पुरातत्व का परम्परा से समन्वय नहीं किया गया तो उसे समझा ही नहीं जा सकता। प्राचीन सभ्यताओं को समझने के लिए परम्परा से प्राप्त स्रोतों का अध्ययन जरूरी है। पुरातत्व तो एक मृत शरीर है। इसमें पुरातत्वविद जान फूँकते हैं। इसमें लोककलाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इतिहास के पुनर्लेखन पर अनावश्यक रूप से टिप्पणियाँ की जा रही हैं। विश्व की सभी सभ्यताओं का पुनर्लेखन हो रहा है। भारत को भी अपनी जड़ों से लेकर आज तक के इतिहास का पुनर्लेखन करना चाहिए।

समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा वाले देश समाज का पुनर्लेखन एक सतत आवश्यकता है। जब-जब नए स्रोतों का प्रकाशन होगा, तब तब इतिहास को फिर से लिखने की आवश्यकता होगी। इतिहास में परम्परा को नकारने की परम्परा उन्हीं देशों में रही है, जिनकी अपनी कोई परम्परा नहीं है। जिनकी समृद्धशाली परम्परा रही है वहाँ इतिहास लेखन परम्पराओं की महत्ता बनी रहेगी। **—डॉ० दयानाथ त्रिपाठी**
अध्यक्ष, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद
नई दिल्ली

आपका पत्र

आपके लघुपत्र से बड़े महत्त्वपूर्ण समाचार मिलते हैं।

फरवरी अंक के पृष्ठ तीन पर आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी के सन्दर्भ में वरुण वेंकटेश्वर (मिशिगन, अमेरिका) तथा सुब्बैया वेंकटरमण (तिरुवनन्तपुरम्) का अभिमत प्रकाशित किया है। एक हिन्दी की बहुप्रचलितता एवं राष्ट्रैक्यमूलकता के प्रति अश्रद्धा व्यक्त की है तथा दूसरे ने उसे खिचड़ी भाषा कहते हुए उसकी कमियों को रेखांकित किया है। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसी धारणा रखने वालों का मानसिक धरातल क्या है? ये केवल हिन्दी के ही बारे में सोचते हैं अथवा राष्ट्र के विषय में? यदि हिन्दी सार्वदेशिक भाषा नहीं है तो क्या तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ एवं मराठी, गुजराती आदि सारे राष्ट्र में बोली जाती हैं? यदि मुम्बई के सिने जगत की ही विश्वव्यापी लोकप्रियता को दृष्टि में रखें तो भी भारत की एकमात्र बहुप्रचलित भाषा हिन्दी ही है।

'खिचड़ी' से क्या अभिप्राय है सुब्बैया जी का? यदि संस्कृत शब्दों की प्रचुरता के कारण उन्हें हिन्दी 'खिचड़ी' लगती है तो अपनी समझ सुधार लेनी चाहिये। खिचड़ी उसे कहते हैं जिसमें दो विजातीय तत्त्वों का मिश्रण हो, जैसे सफेद चावल में काली उड़द। हिन्दी में संस्कृत शब्दों का मिश्रण 'दूध से दूध' का मिश्रण है क्योंकि संस्कृत का प्रत्यक्ष अवतरण मात्र हिन्दी में है। हिन्दी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है, हर प्रकार से। हाँ, दक्षिण भारत में भाषायें अवश्य ही संस्कृत से भिन्न हैं। फलत: तेलुगु आदि में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता उन्हें निश्चय ही 'खिचड़ी भाषा' बनाती है। संस्कृत में कमियाँ बताने का भी एकमात्र कारण है सुव्वैयाजी का हिन्दीविषयक अधकचरा ज्ञान अथवा हिन्दी के प्रति उनका पूर्वाग्रह।

आखिर ये भारतपुत्र चाहते क्या हैं? क्या अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं? या फिर अनन्तकाल तक भारत को राष्ट्रभाषा-विहीन बने रहने का स्वप्न देख रहे हैं? कमाल पाशा मात्र एक आदेश से तुर्की को राष्ट्रभाषा बना सकते हैं! 13177 द्वीपों के इण्डोनेशिया की एक राष्ट्रभाषा (वहासा इण्डोनेशिया) हो सकती है। तो फिर जन-जन का कण्ठहार बनी हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा क्यों नहीं बन सकती?

— प्रो० राजेन्द्र मिश्र
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

साहित्यिक अंत्याक्षरी

भारतीय वाङ्मय में 'साहित्यिक अंत्याक्षरी' के विषय में समाचार पढ़कर प्रसन्नता हुई। यह अंत्याक्षरी उत्तरांचल के राजभवन में राज्यपाल श्री सुदर्शन अग्रवाल की प्रेरणा से हुई। बच्चों ने अंत्याक्षरी प्रतियोगिता में भाग लिया। पहले अंत्याक्षरी का तात्पर्य होता था हिन्दी के कवियों की कविताओं के अंशों का पाठ। बच्चे कविता के अन्तिम अक्षर को ध्यान में रखकर कविता सुनाते थे। इसके लिए बच्चों को अनेक

कविताएँ याद करनी पड़ती थीं। इस क्रम में कविता और साहित्य से परिचय बढ़ता था। अंत्याक्षरी में प्राय: दोहे, चौपाइयाँ, सवैये और आधुनिक कवियों की कविताएँ सुनाई जाती थीं।

अंत्याक्षरी की इस लोकप्रियता को फिल्मवालों ने लपक लिया। फिल्मी गीतों के बेतहाशा प्रचार के फलस्वरूप फिल्मी गीतों की अंत्याक्षरी चल पड़ी। उन्हें प्रायोजक भी मिल गए। तब वास्तविक अंत्याक्षरी साहित्यिक अंत्याक्षरी बनकर सिमट गई और अब इतिहास की चीज बनती जा रही है। कविता और साहित्य से परिचय बढ़ाने के लिए इसको पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। अभिभावकों और विशेष रूप से शिक्षा संस्थाओं की उदासीनता के कारण यह परिस्थिति पैदा हुई। अभी कुछ ही समय पूर्व शिमला में आयोजित हिन्दी के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में एक विश्वविद्यालयीय प्रोफेसर ने कहा कि हिन्दी में आज तक बाल साहित्य नहीं रचा गया। इसी से हिन्दी में बाल साहित्य पर शोध सम्भव नहीं है। वास्तविकता यह है कि बाल साहित्य पर अब तक लगभग चालीस व्यक्तियों को पी-एच०डी० की उपाधि मिल चुकी है। ऐसे बुद्धिजीवी भी बच्चों को बाल कविता से दूर करने में भूमिका निभाते हैं। बाल शिक्षा संस्थाओं को आगे बढ़कर इस दिशा में पहल करनी चाहिए। स्वतंत्रतापूर्व काल में मिडिल में हिन्दी कविता लेखन का एक प्रश्न ही आता था। आशा है, बाल शिक्षा संस्थाओं का इस ओर ध्यान जाएगा। राज्यपाल महोदय धन्यवादार्ह हैं। संचालन के लिए कवि डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र भी।

— डॉ० श्रीप्रसाद

भरपूर जानकारियों से परिपूर्ण इस फरवरी अंक में आपके सम्पादकीय में उठाए मुद्दे विचारणीय हैं। इस बाजारवाद में हंगामा ज्यादा दिखायी देता है पर इस देश के अनेक अंचल महानगरों की गतिविधियों से महरूम रह जाते हैं। वस्तुत: साहित्य, संस्कृति और कला को अंचलों की लोकलाओं, साहित्य व संस्कृति से जोड़कर देखना जरूरी है।

— यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', बीकानेर

स्वतंत्रता के 56 वर्ष बाद भी हिन्दी का देश में ह्रास ही हुआ है। राजभाषा होने की जगह अब वह प्रान्त भाषा भी पूरी तरह नहीं हो पाई है।

सारा कार्य प्रान्तीय भाषा में होने से, अंग्रेजी का वर्चस्व कम होगा। प्रान्त से अन्य प्रान्त में जाने वाले शायद सात-आठ प्रतिशत होंगे और विदेश जाने वाले दो-तीन प्रतिशत। जो सात-आठ प्रतिशत अन्य प्रान्त में जायेंगे उनको उस प्रान्त की भाषा को सीखना पड़ेगा। चूँकि 60 प्रतिशत से ज्यादा अन्य हिन्दी भाषी हैं, ज्यादा लोगों को हिन्दी सीखनी पड़ेगी। इसके सिवाय हिन्दी भाषी यात्री (टूरिस्ट) इन प्रान्तों में जायेंगे। उनसे व्यवहार करने के लिए भी ये लोग हिन्दी सीखेंगे। धीरे-धीरे अपने आप हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि बढ़ेगी (जरूरत के कारण) और सामान्य लोगों को इंग्लिश की जगह हिन्दी का व्यवहार ज्यादा सरल और व्यावहारिक लगेगा। इंग्लिश का व्यवहार कम होने से, उस संस्कृति का वर्चस्व भी कम होने लगेगा। भारतीय संस्कृति वापिस ऊपर आने लगेगी। थोड़ा धैर्य रखना पड़ेगा।

— कृष्णकुमार सोमानी, मुम्बई

'भारतीय वाङ्मय' का कलेवर उत्तरोत्तर निखरता जा रहा है। 'पुस्तकालय-संस्कृति' जैसे ज्ञानपरक आलेख ने इस अंक की शोभा और गरिमा संवर्द्धित की है। 'भारतीय वाङ्मय' 'देखन में छोटो लगे....।' का पर्याय बनता जा रहा है।

— डॉ० सुधाकर सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय वाङ्मय, मार्च 4, अंक 3 में पुस्तकालय-संस्कृति तथा पुस्तक मेले का सूनापन बहुत अच्छा लगा किन्तु सर्वाधिक सराहनीय रहा साहित्यकार हास्य प्रसंग विशेषकर राजेन्द्र यादव के सन्दर्भ में। हिन्दी साहित्य के प्रचार प्रसार में आपकी पत्रिका का योगदान अभूतपूर्व है। **— महासचिव**
अखिल भारतीय साहित्यकार कल्याण संस्थान
रायबरेली

'भारतीय वाङ्मय' सम्पादकीय विचारोत्तेजक है। पत्रिका के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियाँ भी मिलती रहती हैं।

नवम्बर अंक में 'आइये इन्हें स्मरण करें' तथा 'प्रेमचंदजी का पत्र प्रसादजी के नाम' का पठन 'Readers and Listeners Club' इन्दौर चेप्टर की मासिक सभा में किया गया, जिसे श्रोताओं ने बहुत सराहा। **— प्रह्लाद माहेश्वरी,** इन्दौर

पुस्तकों का कोई विकल्प अभी नहीं है

एक शक्ति जिसे कोई बदल नहीं सकता, वह है विचारों की शक्ति। पुस्तकों में मानव गाथा की शक्ति सिमटी है। पुस्तकों के बगैर कोई भी राष्ट्र अतीत के गर्त में समा जाता है। मैं भारतीय हूँ, लेकिन छह अमेरिकी प्रकाशनों का संचालन करता हूँ जो हमारी कम्पनी नॉफ का हिस्सा हैं। कुछ ही समय पहले हमें बताया गया कि युवा पीढ़ी कम्प्यूटर गेम्स, इंटरनेट चैट और सेलफोन की दीवानी है, लेकिन अचानक इंटरनेट पर एक नई चीज के बारे में तेजी से संदेशों का आदान-प्रदान होने लगा, वह नई चीज थी 'पुस्तक'। बच्चे अपने माता-पिता को पुस्तकों की दुकानों पर हैरी पॉटर का नया संस्करण खरीदने के लिए खींच लाए।

आज दुनिया की दिलचस्पी भारत और यहाँ की किस्सागो सभ्यता के बारे में बढ़ रही है, सो इससे बेहतर समय हो भी नहीं सकता। इस समय दुनिया भर में फैले भारतवंशी भारतीय कहानियों को नया सामयिक आयाम दे रहे हैं। इण्डियन मार्केट रिसर्च ब्यूरो के नए सर्वेक्षण में यह आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि संगीत सुनने और टीवी देखने के बाद आज भी किताबें पढ़ना भारतीय मध्यम वर्ग का तीसरा पसंदीदा शगल है।

भारतीय पुस्तक बाजार एक साल में 70,000 पुस्तकें छापता है, इसमें क्षेत्रीय भाषाओं के अलावा पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं। यह बाजार 10 से 12 फीसदी की सालाना दर से बढ़ रहा है। करीब 1 अरब के वार्षिक कारोबार और 5 करोड़ डॉलर के आयात के साथ भारत विश्व के पाँच सबसे बड़े पुस्तक बाजारों में से एक है। इससे पता चलता है कि यूनेस्को ने 2003 में दिल्ली को विश्व पुस्तक राजधानी क्यों घोषित किया था।

मगर गम्भीर बात यह है कि आज भी भारतीय पुस्तकें विश्व के कुल प्रकाशन की महज आधा फीसदी हैं। शर्म की बात है कि भारत जैसे देश जहाँ पुस्तकें खरीदने में सक्षम आबादी की तादाद अमेरिका की कुल जनसंख्या से ज्यादा है, में पुस्तकों की बिक्री बेहद कम है।

दूसरा अहम मुद्दा है पुस्तकालय, जिसकी अवधारणा भारतीयों के लिए नई नहीं है। भारत के एस०आर० रंगनाथन सम्भवत: पिछले 150 साल के सबसे बड़े पुस्तकालय वैज्ञानिक थे जिनकी संहिताकरण व्यवस्था बेहद उन्नत थी। इसके बावजूद स्वर्ण मन्दिर के पुस्तकालय में प्राचीन पुस्तकों का नष्ट होना और हाल ही में पुणे के ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में दुर्लभ पांडुलिपियों को खुर्द-बुर्द करने की घटना से लगता है कि शायद बहुत-से लोगों को पुस्तकालय के मायने भी नहीं पता। पुस्तकों के बारे में जागरूकता पैदा करना और पाठक खोजना, हम सबके सामने यह दो बड़ी चुनौतियाँ हैं। कुछ साल पहले अमेरिकी टीवी की लोकप्रियता प्रस्तोता ऑप्रा विनफ्रे के साप्ताहिक टीवी बुक क्लब शुरू करने के बाद पुस्तकों की बिक्री काफी बढ़ गई थी। कल्पना की जा सकती है कि अगर आज अमिताभ या ऐश्वर्य राय भारत में टीवी पर ऐसा कार्यक्रम शुरू कर दें तो क्या कमाल हो सकता है।

अगर मुझे भारत की शक्ति परिभाषित करनी होगी तो मैं केवल एक शब्द में करूँगा—जनसंख्या। मेरे लिए इसके मायने हैं सम्भावित पाठकों की एक बड़ी जमात। भारत की आधी से भी ज्यादा जनसंख्या 25 साल से कम उम्र की है। हमारे सामने आज यह दिलचस्प चुनौती है कि हम इस पीढ़ी को पुस्तकें पढ़ने की आदत डाल सकते हैं या नहीं ? अगर ऐसा मुमकिन होता है तो भारत वास्तव में ऐसा देश बन जाएगा जिसका अतीत ही नहीं, भविष्य भी स्वर्णिम है।

— सुन्नी मेहता
अध्यक्ष एवं मुख्य सम्पादक
अल्फ्रेड ए० नॉफ
इण्डिया टुडे से साभार

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी के
कार्यालय के नये परिवर्तित फोन नम्बर
2413741, 2413082, 2421472
फैक्स : 2413082

समाचार

'आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का आलोचना कर्म' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

1 और 2 मार्च, 2004 हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का आलोचना कर्म' पर केन्द्रित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। विभागाध्यक्ष प्रो० महेन्द्रनाथ राय ने विषय की स्थापना करते हुए कहा—नन्ददुलारे वाजपेयी को हिन्दी समीक्षा में छायावाद जैसे प्रतापी, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय आन्दोलन को जमीन देने का श्रेय जाता है। उसके साथ ही साथ महाकवि तुलसीदास के नये पाठ सम्पादन और उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य को नये परिप्रेक्ष्य में उभारने के लिए स्मरण किया जाता है। साहित्य के मार्मिक बोध के साथ-साथ उसमें विश्लेषण क्षमता की अभिव्यक्ति उनकी समीक्षाएँ करती हैं।

प्रो० बच्चन सिंह ने कहा—आचार्य वाजपेयीजी आधुनिक सृजनात्मक आलोचक हैं। उन्होंने केवल छायावाद ही नहीं सूरदास पर भी विचार किया है। सूरदास के साहित्य समीक्षा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शक्तिशील सौन्दर्य घटनाओं का चित्रण करते समय भाव, रम्य, सृष्टि का भी चित्रण करते हैं जैसे सूरदास का गोचारण प्रसंग। वाजपेयीजी की समीक्षा दृष्टि में सौन्दर्य दृष्टि अलग है।

प्रो० शिवकुमार मिश्र ने कहा—अंग्रेजी का 'क्रिटिक' शब्द आचार्य वाजपेयीजी के लिए सटीक है, आचार्य शुक्ल के बाद वाजपेयीजी ही समीक्षा की कसौटी हैं।

डॉ० सुमन जैन ने कहा कि आलोचना का कर्म, धर्म, मर्म वाजपेयीजी को पढ़ते हुए खुलता है। उनकी आलोचना पद्धति मूल्यधर्मी है। उनमें भारतीयता, जातीय बोध, संस्कृति, प्रकृति समाहित है।

प्रो० कुमार पंकज ने वाजपेयीजी के जीवन अन्तर्विरोधों को सामने रखा।

डॉ० अवधेशप्रधान ने कहा कि आचार्य वाजपेयीजी जैसी मेधा लेकर कम लोग आते हैं। उन्हें एक बार नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

यशपाल के जन्म शताब्दी पर आयोजित गोष्ठी

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के हिन्दी विभाग द्वारा 2 और 3 मार्च 2004 को 'यशपाल के उपन्यास' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के हिन्दी के प्रोफेसर व प्रख्यात आलोचक डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने यशपाल को 'कानों में खुसर फुसर न कर', 'धमाकों की आवाज' में अपनी बात सुनाने वाला लेखक कहा। वे क्रान्तिकारी कर्म से लेखन कर्म की ओर आए हुए लेखक थे व शहीद भगत सिंह व चन्द्रशेखर आजाद जैसे साथियों के साथ मिलकर क्रान्तिकारी कर्म करते हुए मार्क्सवाद ग्रहण करना उनके निरन्तर वैचारिक विकास का सूचक है। वर्तमान दौर में उत्तर आधुनिकतावाद रूपी छलापूर्ण को नव-उपनिवेशवादी-पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था की उपज है और उसका क्रूर रूप अमेरिका द्वारा इराक के साथ किए जा रहे साम्राज्यवादी व्यवहार के रूप में भी चिन्हित है।

प्रमुख अतिथि कमलेश्वर ने कहा कि यशपाल ने अपने लेखन में विवेकपूर्ण ढंग से चीजों को रखा और साम्प्रदायिकता का विरोध किया।

संगोष्ठी संयोजक व हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० चमनलाल ने कहा कि यशपाल का उपन्यासकार रूप सर्वाधिक सशक्त है इसलिए हिन्दी विभाग द्वारा यह संगोष्ठी उपन्यासों पर विमर्श के लिए की जा रही है।

संगोष्ठी में कुल चार अकादमिक सत्र हुए जिनमें 11 आलेखों का पाठ हुआ। पहले सत्र में राष्ट्रीय आन्दोलन व वामपंथी आन्दोलन, दूसरे सत्र में साम्प्रदायिकता और विभाजन, तीसरे सत्र में स्त्री मुक्ति परिप्रेक्ष्य, चौथे सत्र में ऐतिहासिक और तार्किक परिप्रेक्ष्य में यशपाल के उपन्यासों पर विमर्श हुआ।

गोष्ठी में हिन्दी तथा पंजाबी, अंग्रेजी तथा संस्कृत के साहित्य विद्वानों ने भाग लिया जिनमें प्रमुख थे—उपन्यासकार गिरिराज किशोर, प्रो० मैथिलीप्रसाद, प्रो०जवरीमल पारख, डॉ० रोहिणी अग्रवाल, यशपाल के सुपुत्र आनन्द, डॉ० रणजीत कौर कपूर, डॉ० गुरभगत सिंह, डॉ० वीरेन्द्रपाल सिंह, प्रो० कुलवंत ग्रेवाल, डॉ० योगिन्द्र बख्शी तथा अन्य।

पंजाबी विश्वविद्यालय द्वारा यशपाल के जन्म शताब्दी के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी हर दृष्टि से स्मरणीय और सराहनीय रही।

डॉ० महेशचन्द्र शर्मा, डॉ० रामनिहाल शर्मा, श्री प्रेमप्रकाश पाण्डेय तथा गणतन्त्र ओझा

'सिद्धार्थचरित' का लोकार्पण

दुर्ग जिला हिन्दी साहित्य समिति तथा लिट्ररी क्लब के संयुक्त तत्त्वावधान में डॉ० महेशचन्द्र शर्मा के शोधग्रन्थ 'सिद्धार्थचरित' के लोकार्पण समारोह का आयोजन डॉ० रामनिहाल शर्मा की अध्यक्षता में हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ विधानसभा अध्यक्ष श्री प्रेमप्रकाश पाण्डेय तथा विशेष आमंत्रित भिलाई इस्पात संयंत्र के निदेशक श्री गणतन्त्र ओझा थे। ग्रन्थ के लोकार्पण के पश्चात् कृतिकार डॉ० शर्मा को शाल, श्रीफल, पुष्पहार, स्मृति प्रतीक तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया।

भगत सिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० चमनलाल द्वारा सम्पादित 'भगत सिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज' का विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर लोकार्पण किया गया।

पुस्तक की प्रथम प्रति अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बंगलादेशी लेखिका तसलीमा नसरीन को भेंट की गई। इस अवसर पर उपन्यासकार दूधनाथ सिंह, प्रो० लालबहादुर वर्मा, पंकज सिंह, कवयित्री कात्यायनी, डॉ० कमलाप्रसाद व पुस्तक प्रकाशक देश निर्मोही ने विचार व्यक्त किए। पुस्तक में भगत सिंह की 'जेल नोट बुक', भगत सिंह द्वारा आयरिश क्रान्तिकारी डेन ब्रीन की आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद व भगत सिंह द्वारा विभिन्न अवसरों पर लिखित 72 दस्तावेज शामिल हैं, जिनमें पत्र-लेख व अदालत में दिए बयान शामिल हैं।

जयशंकर बाबु को डॉक्टरेट की उपाधि

साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक संस्था 'युग मानस' के संस्थापक एवं 'युग साहित्य मानस' (पूर्व नाम 'युग मानस') के प्रधान सम्पादक **सी० जयशंकर बाबु** को मैसूर विश्वविद्यालय ने 'दक्षिण भारत की हिन्दी पत्रकारिता—एक अध्ययन' विषयक शोध-प्रबन्ध पर डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की है। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं कर्नाटक के राज्यपाल महामहिम त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी ने बाबु को यह उपाधि प्रदान की है। दक्षिण भारत की हिन्दी पत्रकारिता के सन्दर्भ में विस्तृत एवं प्रामाणिक इतिहास के रूप में प्रस्तुत इस शोध-प्रबन्ध में दक्षिण भारत से प्रकाशित 265 से अधिक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा की गई है। इस समग्र अध्ययन से यह तथ्य उजागर हुआ है कि दक्षिण भारत में हिन्दी पत्रकारिता का कुल 98 वर्ष का इतिहास है। इस शोध-प्रबन्ध के अनुसार वर्तमान समय में दक्षिण भारत से लगभग 80 पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं, जिनमें पाँच दैनिक पत्र भी शामिल हैं।

पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी के 86वें जन्मदिवस पर प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ

अभिनन्दन-भारती
एवं
संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

सम्पादक
प्रो० विद्याशंकर त्रिपाठी, डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी,
डॉ० धर्मेन्द्र द्विवेदी

मूल्य : 400.00

प्रकाशक
विश्व भारती अनुसन्धान परिषद
ज्ञानपुर (भदोही) उ०प्र०

ग्रन्थ 6 खण्डों में है। प्रथम खण्ड में सन्देश, अभिनन्दन एवं शुभकामनाएँ, खण्ड-2 : मेरा जीवन संघर्ष (आपबीती), खण्ड-3 : अभिनन्दन एवं संस्मरण, खण्ड-4 : संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना (क) वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, (ख) रामायण, महाभारत एवं पुराणों में पर्यावरण चेतना, (ग) संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना, (घ) विविध, खण्ड-5 : डॉ० कपिलदेव रचित स्फुट गीत, खण्ड-6 : चित्रावली।

यह अभिनन्दन ग्रन्थ मात्र नहीं है। भारतीय मनीषा के विद्वान् के विगत 60 वर्षों के कार्यों की समीक्षा है और प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर पर्यावरण के सन्दर्भ में विशिष्ट विद्वानों के लेखों का संग्रह है। इससे यह अभिनन्दन ग्रन्थ होते हुए विद्वान् को अर्पित पर्यावरण पुष्पाञ्जलि है।

पुरस्कार-सम्मान

'डॉ० विजयेन्द्र स्नातक सम्मान' से सम्मानित

रघुनन्दनप्रसाद शर्मा

श्री रघुनन्दनप्रसाद शर्मा को उनकी 147वीं कृति 'विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति' को इन्द्रप्रस्थ साहित्य भारती (पंजी०) द्वारा साहित्य कृति सम्मान समारोह-2003 में 'डॉ० विजयेन्द्र स्नातक सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस कृति को समाजोपयोगी, रचनाधर्म के गुणों से परिपूर्ण तथा युग की साहित्य यात्रा के अनुरूप माना गया। सम्मान भारत सरकार के कृषिमंत्री श्री राजनाथ सिंह द्वारा हिन्दी भवन, दिल्ली में प्रदान किया गया। हिन्दी की सतत और निस्वार्थ सेवाओं के उपलक्ष्य में शर्माजी को 1985 में दिल्ली साहित्य समाज द्वारा कुशल सम्पादन के लिए 'प्रशस्ति पत्र', 1990 में समन्वय समिति, के०स०हि०प० वाराणसी द्वारा 'हिन्दी सेवा सम्मान', 1998 में हिन्दी अकादमी, दिल्ली सरकार द्वारा 'साहित्यकार सम्मान 1997-98', राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष 1999 में केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद द्वारा 'राजभाषा रत्न' की उपाधि तथा वर्ष 2001 में 'पद्मश्री डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे स्मृति सम्मान' से भी सम्मानित किया जा चुका है।

श्री शर्मा 1944 से सतत रूप में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं। 1962 ई० से सरकारी कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दृष्टि से प्रदर्शनियाँ लगाने, प्रतियोगिताएँ करवाने और विभिन्न प्रकाशन तथा शब्दावली चार्ट/पुस्तिकाएँ निकालने में अहर्निश जुटे रहे हैं। उन्हें राजर्षि टण्डन, सेठ गोविन्ददास, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री गंगा बाबू प्रभृति हिन्दी सेवियों के साथ कार्य करने का सौभाग्य भी मिला है। इनके अब तक 155 से अधिक प्रकाशन निकल चुके हैं।

पी. रामचंदुडु को वाचस्पति पुरस्कार

वर्ष 2003 के लिए के०के० बिड़ला फाउण्डेशन का बारहवाँ **वाचस्पति पुरस्कार आचार्य पी० रामचंदुडु** को उनके निबन्ध संग्रह 'को वै रस' के लिए, **शंकर पुरस्कार प्रो० वेदप्रकाश वर्मा** को उनकी पुस्तक 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद' के लिए देने का निर्णय किया गया है। के०के० फाउण्डेशन की जारी विज्ञप्ति के अनुसार वाचस्पति पुरस्कार पिछले दस वर्षों में प्रकाशित संस्कृत की साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त किसी भी अन्य विषय की पुस्तक और संस्कृत में अनूदित पुस्तकों को दिया जाता है और इसमें एक लाख रुपये की नकद राशि, प्रशस्तिपत्र और प्रतीक चिन्ह दिया जाता है।

प्रथम राष्ट्रीय अक्षर-सम्मान

साहित्य जगत को निरन्तर अपनी सेवाएँ देते आ रहे साहित्य सेवियों को अक्षरधाम समिति, कैथल (हरियाणा) की ओर से सम्मानित किया जायगा। सम्मानित होने वालों को निम्न सम्मान उपाधियाँ प्रदान की जायेगी साथ ही प्रत्येक विजेता को 1100 रुपये की साहित्यिक पुस्तकें, शाल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह के अतिरिक्त सम्मान पत्र भी दिया जायेगा जिसमें साहित्यकार का रंगीन छायाचित्र भी प्रकाशित होगा। समारोह लुधियाना (पंजाब) में आयोजित होगा।

1. अक्षर भूषण : प्रबोधकुमार गोविल (वनस्थली, राजस्थान)
2. अक्षर विभूषण : श्याम विद्यार्थी, (डिब्रुगढ़, असम)
3. अक्षर रत्न : सतीश दूबे (इन्दौर, म०प्र०)
4. अक्षर वीर : रमेश सोबती (लुधियाना, पंजाब)
5. अक्षर सेवी : पद्म गुप्ता (दिल्ली),
6. अक्षर राज : सुरेश शर्मा (इन्दौर)
7. अक्षर आचार्य : भानुदत्त त्रिपाठी (उन्नाव, उ०प्र०)
8. अक्षर प्रिय : घमण्डीलाल अग्रवाल गुड़गाँव
9. अक्षर सेन : पुष्पेन्द्र वर्णवाल, मुरादाबाद (उ०प्र०)
10. अक्षर हंस : नरेन्द्र मिश्र धड़कन
11. अक्षर गौरव : सुश्री कृष्णा कुमारी
12. अक्षर श्री : डॉ० सुशील पाण्डेय, सुल्तानपुर (उ०प्र०), रसूल अहमद सागर, रामपुरा (उ०प्र०), इन्दिरा अग्रवाल (उ०प्र०), अजीज अंसारी, इन्दौर (म०प्र०), हबीब राहत हुबाब, खण्डवा (म०प्र०), शंकर सक्सेना, राजनंदगाँव (छ०ग०), डॉ० वीरेन्द्र कुमार छिन्दवाड़ा (उ०प्र०), सार्थ, कानपुर (उ०प्र०), डॉ० शरदनारायण खरे (म०प्र०), हर्षकुमार हर्षद्व, पटियाला (पंजाब), डॉ० राजबीर सिंह धनखड़, रोहतक हेमचन्द्र सकलानी, देहरादून, प्रज्ञा पाठक, उज्जैन (म०प्र०), उषा यादव, इलाहाबाद (उ०प्र०), डॉ० संजय गर्ग, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)।

पुस्तक प्राप्ति

आखिरी सच
अनिलकुमार
प्रकाशक : क्रान्ट्स पब्लिकेशन्स, सी०-18
साउथ एक्सटेंशन-2, नई दिल्ली-49
मूल्य : 180.00 रुपये

लेखक के निजी जीवन के संघर्ष की आध्यात्मिक चेतना, अत्यन्त प्रेरक तथा पठनीय

महानाटक : विभावना एवं स्वरूप विकास
डॉ० आर०पी० मेहता
वितरक : सरस्वती पुस्तक भण्डार, 112 हाथीखाना
अहमदाबाद - 380 001
मूल्य : 80.00 रुपये

विश्वनाथ कविराज द्वारा प्रस्तुत 'महानाटक' विभावनाक सम्यक् परीक्षण। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य आधारों की तुलनात्मक समीक्षा।

पुस्तक समीक्षा

भारतीय समाज एवं संस्कृति परिवर्तन की चुनौती

सत्यप्रकाश मित्तल

मूल्य : 380.00

ISBN : 81-7124-347-9

प्रसिद्ध समाजवादी चिन्तक आचार्य नरेन्द्रदेव की स्मृति में उनके संस्कृति-विषयक विचारों की सम्यक् व्याख्या के लिए एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। इस गोष्ठी में ख्यातिनामा चिन्तकों, लेखकों एवं विचारकों ने विभिन्न दृष्टियों से संस्कृति की व्याख्या की और इसकी वर्तमान चुनौतियों का लेखा-जोखा अपने प्रपत्रों द्वारा प्रस्तुत किया। आलोच्य पुस्तक इन्हीं लेखों का सम्पादित संग्रह है। पुस्तक में कुल 41 लेख हैं। इनके अतिरिक्त आचार्य नरेन्द्रदेव के संस्कृति विषयक पाँच लेख इस पुस्तक परिशिष्ट भाग में संकलित हैं। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में सिद्धान्त एवं प्रत्ययपरक लेख हैं। दूसरे खण्ड के लेख समस्या-समाधानपरक हैं।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एवं शिक्षाविद् प्रोफेसर गोविन्दचन्द्र पाण्डे ऐसा मानते हैं कि परम्परा का सीधा सम्बन्ध समुदाय की अस्मिता से होता है। विभिन्न समुदाय अपनी अस्मिता बनाये रखने के लिए परम्परा को कसकर पकड़े रहे हैं। परम्परा के सामने मुख्य चुनौती वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों से आती है। परम्परा में इतनी शक्ति होती है कि वह इन चुनौतियों का सामना करते हुए अपना अस्तित्व बनाये रखती है। डॉ० पाण्डेय की दृष्टि में परम्परा यदि समुद्र है तो विभिन्न चुनौतियाँ उसमें उठने वाली लहरों के समान हैं। प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ऐसा मानते हैं कि चित्त की दो कोटियाँ होती हैं, लोकचित्त एवं व्यष्टिचित्त। दोनों चित्तों का सम्बन्ध संस्कृति से होती है। लोकचित्त संस्कृति के परम्परा पक्ष को सबल बनाता है जबकि व्यष्टिचित्त परिवर्तन की ओर झुका रहता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रोफेसर श्यामाचरण दूबे की मान्यता है कि प्रत्येक ''संस्कृति में अपने मौलिक तत्व थोड़े ही होते हैं। अधिकांश तो बाहर से आते हैं और अपनाये जाते हैं। अपनाये जाने की इस प्रक्रिया में संस्कृति उन्हें (बाह्यगत तत्त्व) अपने साँचे में ढाल लेती है।'' प्रोफेसर दूबे की मान्यता है कि परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्व में परम्परा का पलड़ा भारी रहता है। समाजशास्त्रीय जगत् के सशक्त हस्ताक्षर प्रोफेसर योगेन्द्र सिंह की मान्यता है कि ''भारतीय सांस्कृतिक परम्परा अपने सार-रूप को छोड़े बिना तथा अपने मूलभूत मूल्यों एवं सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करते हुए पश्चिमी संस्कृति से अनुकूलन'' प्राप्त कर रही है। प्रोफेसर सिंह की व्याख्या से स्पष्ट है कि वे भारतीय संस्कृति के परम्परापक्ष में निरन्तरता के गुण पाते हैं।

प्रोफेसर रमेशचन्द्र तिवारी अपने प्रपत्र में संस्कृति विषय पर आचार्य नरेन्द्रदेव की दृष्टि की विशद् व्याख्या करते हैं। ज्ञातव्य है कि आचार्य नरेन्द्रदेव संस्कृति को 'चित्तभूमि की खेती' मानते थे। प्रोफेसर तिवारी के अनुसार आचार्य नरेन्द्रदेव ''भारतीय संस्कृति के उदात्त एवं श्रेष्ठ तत्त्वों को आधुनिक युग के लिए उतना ही उपादेय मानते थे जितनी उसकी उपादेयता प्राचीन काल में थी।'' वास्तव में ये तत्त्व शाश्वत, सनातन एवं सार्वभौमिक हैं। प्रोफेसर हर्षनारायण संस्कृति को राष्ट्र की अवधारणा से जोड़ते हैं। प्रोफेसर नारायण के अनुसार ''राष्ट्र संस्कृति के भिन्न नहीं होता। राष्ट्र मात्र देश नहीं है। संस्कृति-निरपेक्ष राष्ट्रीयता खोखली राष्ट्रीयता है। राष्ट्र स्वातंत्र्य का अर्थ है सांस्कृतिक स्वातंत्र्य।''

भाषा-विज्ञान के विरल हस्ताक्षर प्रोफेसर रमेशचन्द्र शाह की मान्यता है कि भारतीय धर्म ही भारतीय संस्कृति है। संस्कृति के परिवर्तन का अर्थ है आचार-व्यवहार एवं व्यवस्था में होने वाला परिवर्तन। प्रोफेसर शाह के अनुसार संस्कृति 'गतिशील प्रक्रिया' है। प्रसिद्ध मानव शास्त्री प्रोफेसर वैद्यनाथ सरस्वती की मान्यता है कि संस्कृति के दो कलेवर होते हैं, वाह्य एवं आन्तरिक। परिवर्तन संस्कृति के वाह्य कलेवर में होता है। आन्तरिक कलेवर का मूल स्वभाव परिवर्तन के प्रभाव से मुक्त रहता है।

पौर्वात्य दृष्टि से समाज की व्याख्या करने वाले संस्कृतज्ञ एवं समाजशास्त्री प्रोफेसर कैलासनाथ शर्मा ऐसा मानते हैं कि अंग्रेजी शब्दों का सहारा लेकर हम 'संस्कृति', 'समाज' एवं 'व्यक्ति' विषयक भारतीय मनीषा की थाह नहीं लगा सकते। उदाहरण के लिए जो अर्थ 'समाज', 'संस्कृति' एवं 'व्यक्ति' में निगूढ़ है, वह वही नहीं है जो 'सोसाइटी', 'कल्चर' एवं 'इन्डविजुएल' जैसे शब्दों से ध्वनित होता है। भारतीय संस्कृति को समझने के लिए भारतीय परम्परा का ज्ञान आवश्यक है।

प्रोफेसर कृष्णनाथ आचार्य नरेन्द्रदेव की 'संस्कृति' शब्द की परिभाषा की पुनर्व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ''चित्तभूमि नई भी होती है और पुरानी भी। खेती से फिर-फिर यह नई होती रहती है; पुनर्नवा होती रहती है।'' संस्कृति देश-काल से बँधी हुई रहती है और इसके पार भी जाती है। संस्कृति एक अनन्त प्रवाह है, अतीत से लेकर सुदूर भविष्य तक का। प्रोफेसर कृष्णनाथ का कथन है कि भारतीय संस्कृति में द्वन्द्व का स्वर बड़ा प्रखर है। यह स्वर श्रमण-ब्राह्मण संस्कृति के घर्षण से पैदा होता है। इन दोनों संस्कृतियों के संघात से भारत में 'मिश्रित संस्कृति' का जन्म हुआ। प्रसिद्ध दार्शनिक एवं भारतविद्याशास्त्री प्रोफेसर एन०के० देवराज ऐसा मानते हैं कि आधुनिक युग की चुनौतियों के प्रत्युत्तर में आज नवधार्मिक क्रान्ति की आवश्यकता है। ऐसी ही क्रान्ति भारतीय संस्कृति के प्रवाह को नयी दिशा की ओर मोड़ सकती है।

प्रसिद्ध दार्शनिक अच्युत पटवर्धन की मान्यता है कि पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति में मौलिक अन्तर है। पाश्चात्य संस्कृति भोगवादी है जबकि भारतीय संस्कृति योगवादी है। इन दोनों संस्कृतियों के मध्य में कोई मिलनबिन्दु है ही नहीं। पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति के उत्पादों से प्रकृति में प्रदूषण बढ़ रहा है। भारत की योगवादी संस्कृति भी पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के सम्पर्क में आकर चौधियाँ गई है।

प्रखर चिन्तक एवं हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान हस्ताक्षर पण्डित विद्यानिवास मिश्र अपने प्रलेख में आचार्य नरेन्द्रदेव के व्यक्तित्व की विशेषताओं का बखान करते हैं। प्रोफेसर मिश्र ऐसा मानते हैं कि आचार्य नरेन्द्रदेव अतियों के बीच मध्यम मार्ग की लकीर खोजते रहते थे। वे अपनी मान्यताओं का अनुपालन बड़ी दृढ़ता के साथ करते थे।

पुस्तक की समीक्षा से मुझे ऐसा लगता है जैसे इसके सम्बन्ध में 'गागर में सागर' भरने की उक्ति चरितार्थ होती है। एक पुस्तक में संस्कृति विषयक इतनी सारी दृष्टियों को समेटना वस्तुतः दुर्वह कार्य था। भारतीय संस्कृति के विशाल भवन में प्रवेश के लिए यह पुस्तक एक कुंजी का काम करती है।

— प्रो० वंशीधर त्रिपाठी

हिन्दी का गद्य-साहित्य

चतुर्थ परिवर्धित संस्करण

डॉ० रामचन्द्र तिवारी

पृष्ठ : 938 मूल्य : 600.00

ISBN : 81-7124-358-4

'हिन्दी का गद्य साहित्य' शीर्षक प्रतिष्ठ एवं शोध-निर्भर कृति है। इतनी स्वल्प अवधि में इसके इतने संस्करण (चार संस्करण) लोकप्रियता के ठोस प्रमाण हैं। ग्रन्थ की उपादेयता निर्विवाद है। ग्रन्थ में कुल तीन खण्ड हैं—प्रथम खण्ड हिन्दी गद्य के स्वरूप विकास पर केन्द्रित है जिसमें आदिकाल से लेकर विभिन्न काव्यान्दोलनों में अन्तर्हित सम्भावनाओं को विकसित करना गद्य-प्रवाह अपनी अद्यावधिक स्थिति की प्रस्तुति करता है। 'अपाद-पद-सन्तान' गद्य है और 'छन्दोबद्ध पद्य'। तिवारीजी इस पारम्परिक मान्यता से सहमत हैं। एक तरफ जहाँ उन्होंने अरुण कमल और राजेश जोशी तक गद्य-प्रवाह को विकसित होते दिखाया है—वहीं मर्यादा-निर्वाह की चतुरस्र उदासीनता की चिन्त्य स्थिति का प्रभाव भी भाषा में लक्षित किया है। कुल मिलाकर वे निराश नहीं हैं और मानते हैं कि हिन्दी गद्य के विकास का भविष्य उज्ज्वल है।

ग्रन्थ का दूसरा खण्ड 'हिन्दी गद्य की विधाओं के

विकास' पर केन्द्रित है इस खण्ड में गद्य की प्रतिष्ठित ओर विकसनशील लगभग डेढ़ दर्जन गद्य विधाओं के उद्भव और विकास पर विचार किया गया है। निबन्ध, आलोचना, उपन्यास, कहानी तथा नाटक जैसी विधाएँ पर्याप्त विकसित और प्रतिष्ठित विधाएँ हैं और शेष विकसनशील, जो अपेक्षाकृत संख्या में स्वल्प भी हैं। 'केरीकेचर' का तो बहुत-से लोग नाम भी नहीं जानते। तिवारीजी की जानकारी का क्षितिज काफी विस्तृत है—किसी भी क्षेत्र का छोटे-से-छोटा रचनाकार भी नहीं छूट पाता। निबन्ध की विधा में श्रीराम परिहार और अष्टभुजाप्रसाद शुक्ल भी उपेक्षित नहीं रहे हैं। संग्रह की प्रवृत्ति विवेचन की गहराई की ओर मुड़ने में आड़े आती है। समीक्षात्मक निबन्ध या निबन्धात्मक समीक्षा की बात उक्त विधा-भेदों की विभेदक रेखा को दुर्लक्ष्य कर देती है। विधागत सांकर्य तो है—पर असंकीर्णता भी सिद्ध है। आलोचना विधा के उपस्थापन में अपेक्षाकृत गाम्भीर्य का भी निर्वाह है पर उदीयमान आलोचकों का लम्बा प्रघट्टक और नन्ददुलारे वाजपेयी को चार-साढ़े चार पंक्तियों में निपटा देना खटकता है—पर मूल्यांकन में विस्तार है। कथा साहित्य वाला अंश सूचना-प्रचुर होने के साथ-साथ विवेचन का गाम्भीर्य लिए हुए है। इसी प्रकार नाट्य साहित्य पर भी विचार विद्यमान है। गद्य की अन्य-विधाओं का समावेश सांगोपांगता के लिए आवश्यक था। इस प्रकार यह प्रयास गद्य-विधाओं का विश्वकोश बन गया है। मूल ग्रन्थ तो इतना ही है।

ग्रन्थ का तीसरा खण्ड विशिष्ट साहित्यकारों के मूल्यांकन पर केन्द्रित है। यह खण्ड सूचनाबहुल न होकर विवेचनात्मक गहराई लिए हुए है। इस खण्ड में अट्ठाइस विरचन और विवेचनकारों के अवदान का गम्भीर लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। डॉ० तिवारी राग-द्वेष-ग्रस्त चेतना से लेखन में प्रवृत्त नहीं होते, अत: उनकी वस्तुनिष्ठता को दृष्टिगत कर उनके विवेचनों और तदाधृत मूल्यांकनों असहमत होना बड़ा कठिन जान पड़ता है। इस खण्ड के आलोच्य साहित्यकारों में आलोचक, कवि और उपन्यासकार ही प्रचुर मात्रा में गृहीत हुए हैं। नाटककार और प्रसिद्ध कहानीकार भी रह गए हैं।

सर्वाधिक समावेश लब्धप्रतिष्ठ समीक्षकों का हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामविलास शर्मा तथा डॉ० नगेन्द्र जैसे प्रतिष्ठित आलोचकों पर उनकी लेखनी निष्ठा के साथ सक्रिय हुई है और इन लोगों की केन्द्रीय विशेषताओं के साथ प्रतिष्ठित अन्यविध मान्यताओं का भी यथासम्भव सम्यक् उपस्थापन हुआ है। वे मानते हैं कि आचार्य शुक्ल का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षण भारतीय क्रमागत प्रतिमानों, विशेषकर रस-सिद्धान्त से सम्पृक्त रहा है। यह सही है कि उनके रस-सिद्धान्त का आधार भारतीय दर्शन नहीं है—आत्मवादी दर्शन। उन्होंने अपने प्रस्थान की पहचान अलग बनाई है। उन्होंने आलम्बन को असाधारण या 'व्यक्ति' ही रखा है—साधारणीकरण केवल तद्गत धर्मों का ही कहा है। बल इसी पर है। वाजपेयीजी पर विचार करते हुए उनकी मुख्य स्थापना 'रचनात्मक क्रियाशील जनतन्त्र' तिवारीजी की दृष्टि से ओझल नहीं हो पाया है। उन्होंने ठीक ही लक्षित किया है कि 'सौन्दर्य' को केन्द्र में रखकर समीक्षा करने वाले वाजपेयीजी को, आत्मवादी वैदिक दृष्टि पर आस्था रखने वाले वाजपेयीजी को न प्रेमचन्द का उपदेशक रूप पसन्द आया और न ही आचार्य शुक्ल का नैतिकता के अभेद्य कवच से मण्डित लोकमंगल का तत्त्व ही। आचार्य द्विवेदी ने शुक्लजी की 'मानवता' और वाजपेयीजी के 'सौन्दर्य' की अवधारणाओं को आगमिक चिन्तन के आलोक में और गहराई दी—तिवारीजी ने इसे बखूबी स्पष्ट किया है। डॉ० रामविलास शर्मा के आदर्श समीक्षक तिवारीजी की दृष्टि में आचार्य शुक्ल हैं। यह सही है कि वे मार्क्सवाद में निष्ठा रखते हैं—पर इससे उनकी राष्ट्रीय भावना आहत नहीं होती। वे अपनी मान्यताओं के सूत्र परम्परा में खोजते हुए ऋग्वेद तक चले जाते हैं। तिवारीजी उनके 'लोकजागरण' तथा 'हिन्दी जाति' और 'जातीय साहित्य'—जैसी मान्यताओं को भी स्पष्ट करते हैं। अन्तत: आते हैं—डॉ० नगेन्द्र। नामवरी वृत्ति से हटकर तिवारीजी ने इनकी प्रस्तुति की है। उनकी दृष्टि में डॉ० नगेन्द्र ने विवेकशील पाठकों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया है। पन्तजी के साथ तिवारीजी मानते हैं कि डॉ० नगेन्द्र रसवेत्ता तथा रस-द्रष्टा हैं। यद्यपि रस-सिद्धान्त के वे पुनराख्याता हैं तथापि उन पर मनोवैज्ञानिक मान्यताओं और पाश्चात्य चिन्तक क्रोचे तथा आई०ए० रिचार्ड्स का प्रभाव स्पष्ट है। डॉ० नगेन्द्र शास्त्रनिष्ठ पण्डितों और शास्त्रोपेक्षी नवचिन्तकों के मध्यवर्ती हैं—अत: उन्हें दोनों के आक्षेपों का भाजन बनना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि वे एक अध्यवसायी चिन्तक और समीक्षक रहे हैं। इस खण्ड से ग्रन्थ की उपादेयता और समृद्ध हुई है

अन्तत: यह कि प्रस्तुत कृति के अन्त: में कुछ महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट जोड़ दिए गए हैं। पहला परिशिष्ट है—पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त इतिहास और दूसरा है—हिन्दी का विश्वरूप। इससे भी ग्रन्थ की उपादेयता में वृद्धि हुई है। सहायक ग्रन्थ सूची और लेखकानुक्रमणिका शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी
2, स्टेट बैंक कालोनी
देवास रोड, उज्जैन (म०प्र०)

हिन्दी का गद्य साहित्य
के नवप्रकाशित चतुर्थ संस्करण पर
डॉ० रामचन्द्र तिवारी को
डॉ० रामदरश मिश्र का पत्र

हिन्दी गद्य सम्बन्धी कोई जानकारी प्राप्त करनी हो, किसी भी लेखन की पहचान करनी हो तो यह पुस्तक है न। इसमें झाँककर इसमें गुज़र कर खण्ड या पूरा (पाने वाले की जैसी इच्छा हो) परिदृश्य पाया जा सकता है। बहुत अच्छा लगता है कि इस भागदौड़ वाले साहित्यिक माहौल में आप अपने को चारों ओर से समेट कर साहित्य-साधना में लगाये हुए हैं। निरन्तर प्रकाशित होती जा रही नयी-नयी कृतियों के भीतर से गुजरते हुए उन सबको सहेजे रखना कठिन काम होता है और आप उसे निरन्तर सम्पन्न कर रहे हैं। मेरी बधाई स्वीकार करें। **—रामदरश मिश्र**

लक्ष्मीधर मालवीय
कृत
लाई हयात आए
(स्मृति लेखा)
मूल्य : 280.00

श्री लक्ष्मीधर मालवीय के संस्मरण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन उसमें हिन्दी को लेकर जो लेख है और उसमें जो बातें कही गई हैं वह सही है लकिन मुझे ऐसा लगा वह लेख इस संग्रह में नहीं आना चाहिए। इतने आत्मीय, रोचक संस्मरणों के बाद यह लेख जो कड़वाहट पैदा करता है वह उन सारे मूल्यों के सामने प्रश्नचिह्न लगा देता है लेकिन जो भी हो ये संस्मरण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी, साहित्यिक दृष्टि से भी।

— विष्णु प्रभाकर, दिल्ली

राजस्थानी लोककथा-कोश
प्रथम खण्ड (अ-न)

संकलन-लेखन : **श्री गोविन्द अग्रवाल**
सम्पादक : **श्री कालीचरण केशान**

शौर्य, प्रेम और समर्पण की मरुभूमि राजस्थान लोकसंस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। लोकजीवन की विविधता से मिश्रित लोककथाओं में राजस्थान का जनमानस अभिव्यक्त है। पंचतंत्र की कहानियाँ राजा अमरशक्ति के मूर्ख पुत्रों को ज्ञानवान् बनाने के लिए विष्णु शर्मा द्वारा कही और लिखी गई।

राजस्थान की लोककथाएँ राजस्थानी वंश परम्परा से एक-दूसरे तक पहुँचती रही हैं। इनका क्षेत्र विशाल है, राजस्थान की मरुभूमि में बालू के कणों की तरह बिखरी हुई हैं, इनका संकलन-सम्पादन दुस:ह कार्य है। इसे सम्पन्न किया चूरू के श्री गोविन्द अग्रवाल ने और सम्पादन किया साहित्यनिष्ठ श्री कालीचरण केशान ने। अभी तो इसका एक ही खण्ड प्रकाशित हुआ है—(अ-न) इसके आगे के खण्ड भी प्रकाशित होंगे।

लोक साहित्य के उद्भट विद्वान् एवं साहित्य मनीषी डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ''ये कहानियाँ मानव-जीवन की समस्याओं की शाश्वत भाषा है। कर्म और भाग्य, बुद्धि की चतुराई और मूर्खता, उत्साह और आलस्य, प्रेम और घृणा, आत्मविश्वास और निराशा इन तत्त्वों से मानव जीवन बना है। जब से मनुष्य है, तब से ही मनोभावों की ये प्रेरणायें भी मानव-जीवन के साथ हैं, इन्हीं से उसका जीवन संचालित होता आया है। उन्हें ही उसने कहानियों में ढाला है।''

राजस्थान की जीवन्त संस्कृति का दर्शन इस लोककथा कोश में होता है। श्री गोविन्द अग्रवाल ने इस

ग्रन्थ में 442 पृष्ठों में 616 लोककथाओं का संकलन किया है, जो अत्यन्त रोचक होने के साथ-साथ जीवन के विभिन्न रंग प्रस्तुत करती हैं। अनेक कहानियों में अन्य प्रदेशों की कहानियों से साम्य दीखता है, किन्तु सभी के परिवेश में भिन्नता है।

ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए सम्पादक श्री कालीचरण केशान बधाई के पात्र हैं।

प्रकाशक : नीता प्रकाशन
ए-4, रिंग रोड, साउथ एक्सटेंशन, भाग-1, नई दिल्ली-110 049
(मूल्य : अंकित नहीं है।)

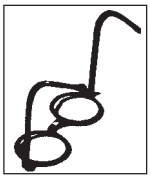

अपना वजूद

कविता-संग्रह

श्यामपलट पाण्डेय

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

125.00

साहित्य अध्येता, शिक्षक, प्रशासक से राजस्व सेवा (अयकर) के अधिकारी के रूप में कवि ने जीवन के विविध रंग और परिवेश की भिन्नता देखी है, अनुभव किया है जिसने भावात्मक संवेदना जागृत की है। 'अपना वजूद' की कविताएँ जीवन के अत्यन्त निकट प्रत्यक्ष जगत की संवेदना का बोध कराती है।

कवि का राजस्व सेवा के अन्तर्गत काशी नगर से मुम्बई महानगर को स्थानान्तरण हुआ, अनायास उसे लगा—कुछ भी नहीं है/मेरे आसपास/बस समुद्र से घिरा हुआ/यह महानगर है/जिसके रेशे-रेशे में भरा है प्रदूषण/और पेड़/जहाँ आदमी से ज्यादा ताकतवर है। सड़क के बीचोबीच खड़े पेड़ के कटने को लेकर हिल जाती है/ऊँची से ऊँची अदालत/जबकि मुश्किल से मिलता है/कफन/किसी लावारिस के मरने पर।

आलोचक विजयकुमार ने ठीक ही लिखा है—कहीं इन कविताओं में एक विकलता है तो कहीं एक प्रश्नाकुलता। कहीं अपने रचना-कर्म के प्रति ही एक बुनियादी संशय का भाव भी। दरअसल यही हमारे समय के अनुभव के विभिन्न शेड्स हैं।

सहज अनुभूति से प्रेरित ये कविताएँ मन को छू लेती हैं। लगता है जो हम देखते और अनुभव करते हैं कवि ने उसी को शब्दाभिव्यक्ति प्रदान की है।

पुस्तक तथा पत्र-पत्रिका परिचय

कुमार विमल का काव्य-अवदान

परख और पहचान

लेखक : कैलाशप्रसाद सिंह 'स्वच्छन्द'

प्रकाशक : सद्विचार प्रकाशन, गुड़गाँव

पृष्ठ : 145 मूल्य : 250.00 रुपये

कुमार विमल हिन्दी-संसार के लब्धकीर्त्ति आलोचक और निबन्धकार हैं। कवि भी हैं। उनके काव्यावदान का मूल्यांकन नहीं हुआ है। लेखक ने उनके बहु-आयामी रचनाधर्मिता का अध्ययन प्रस्तुत किया है। सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्वों पर विमलजी का अनुशीलन विद्वत्समाज में प्रशंसित हुआ है। लेखक ने तेरह अध्यायों में विमलजी के लेखन का गहराई से अध्ययन किया है। **—पानासि**

तनाव (साहित्य की पत्रिका)

अक्टूबर-दिसम्बर 2003 अंक,

पाब्लो नेरूदा की प्रेम कविताएँ

(मूल से अनुवाद)

प्रकाशक : वंशी माहेश्वरी, 57 मंगलवारा पिपरिया - 461 775

बूधन (बंजारा विशेषांक)

सम्पादक : अनिलकुमार पाण्डेय

राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान

बी-14, वसुन्धरा इन्क्लेव, दिल्ली-96

एक अंक का मूल्य : 30.00 रुपये

यह अपने विषय की अकेली त्रैमासिक पत्रिका है। वर्ष एक का तीसरा अंक हमारे सामने है। बंजारा कौन है, इसका इतिहास क्या है, इस विषय पर मोतीराज राठोड के शोधपरक आलेख में अनेक जानकारियाँ दी गयी हैं। उपेक्षित बंजारों के बारे में अभी तक भारतीय समाज अन्धकार में रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में उन्हें अपराधी जनजाति घोषित कर दिया गया था। यह कलंक अभी तक जारी है, जो खेद का विषय है। अंक संग्रहणीय है। **—पानासि**

भारतीय वाङ्मय

मासिक

वर्ष : 5 **अप्रैल 2004** **अंक : 4**

प्रधान सम्पादक

पुरुषोत्तमदास मोदी

सम्पादक

परागकुमार मोदी

वार्षिक शुल्क

रु० 40.00

अनुरागकुमार मोदी

द्वारा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

के लिए प्रकाशित

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि० वाराणसी

द्वारा मुद्रित

E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : **www.vvpbooks.com**

डाक रजिस्टर्ड नं० ए डी-174/2003 RNI No. UPHIN/2000/10104

प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1807 ई० धारा 5 के अन्तर्गत

Licenced to post without prepayment at G.P.O. Varanasi

Licence No. LWP-VSI-01/2001

सेवा में,

प्रेषक : (If undelivered please return to :)

विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

(विविध विषयों की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों का विशाल संग्रह)

विशालाक्षी भवन, पो०बाक्स 1149

चौक, वाराणसी-221 001 (उ०प्र०) (भारत)

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN

Premier Publisher & Bookseller

(BOOKS IN HINDI, SANSKRIT & ENGLISH FOR STUDENTS, SCHOLARS, ACADEMICIANS & LIBRARIAN)

Vishalakshi Building, P.O. Box : 1149

Chowk, VARANASI-221 001(U.P.) (INDIA)

✆ : Offi. : (0542) 2421472, 2413741, 2413082, (Resi.) 2436349, 2436498, 2311423 ● Fax : (0542) 2413082